

डा० आभा गुप्ता

असिस्टेंट प्रोफेसर - हिन्दी राजकीय महाविद्यालय, जकिखनी-
वाराणसी

विषय-हिन्दी

नई शिक्षा नीति - 2020

बी.ए.- प्रथम सेमेस्टर (मेजर)

शीर्षक - कबीर का व्यक्तित्व एवं भाषा

स्वघोषणा

यह सामग्री विशेष रूप से शिक्षण और सीखने को बढ़ाने के शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए है। आर्थिक/ वाणिज्यिक अथवा किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग पूर्णतया प्रतिबंधित है। सामग्री के उपयोगार्थ इसे किसी और के साथ वितरित, प्रसारित या साझा नहीं करेंगे. और इसका प्रयोग व्यक्तिगत

ज्ञान की उन्नति के लिए ही करेंगे। इस कंटेंट में जो जानकारी दी गयी है वह प्रमाणित है और मेरे ज्ञान के अनुसार सर्वोत्तम है।

कबीर एक ऐसी शख्शियत जिसने कभी शास्त्र नहीं पढ़ा फिर भी ज्ञानियों की श्रेणी में सर्वोपरि है। कबीर भारत की वो आत्मा है जिसने रूढ़ियों और कर्मकाण्डों से मुक्त भारत की रचना की है। मानवतावादी व्यवहारिक धर्म को बढ़ावा देने वाले कबीरदास जी का इस दुनिया में प्रवेश भी अपने आप में निराला है। उनका जन्म सन् 1396 में ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन वाराणसी के लहरतारा नामक स्थान पर हुआ था इनके जन्म के सम्बन्ध में अनेक किंवदंतियां हैं। माना जाता है कि कन्या के गर्भ से एक बालक का जन्म होता है जिसे वह लहरतारा के ताल में फेंक आयी नीरू नामक एक जुलाहा उस बालक को अपने घर उठा लाया और उसका पालन पोषण किया, यही बालक आगे चलकर कबीरदास के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

कबीर के व्यक्तित्व के विषय में डॉ० हाजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि “वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़,

आदत से अकखड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड दिल के साफ, दिमाग के दुरूस्त भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म के अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय थे।”^[1] आरम्भ से ही कबीर में हिन्दू भाव से भक्ति करने की प्रवृत्ति लक्षित होती थी जिसे उनके माता-पिता दबा न सके। कबीर को बचपन से ही साधु संगति बहुत प्रिय थी बाह्य आडम्बरों के विरोधी कबीर निराकार ब्रह्म की उपासना पर जोर देते थे वे सदैव सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध थे और इसे कैसे दूर किया जाये इसी विचार में रहते थे।

एक बार किसी से रामानंद के माहात्मा को सुनकर वे उनसे मिलने गये पर पता चला कि मुसलमानों से नहीं मिलते। कबीर ने हार नहीं मानी वे पंचगंगा घाट पर पहुंचकर रात के अंतिम पहर में सीढ़ियों पर लेट गये जब स्वामी जी स्नान के लिए घाट की सीढ़ियों पर से उतर रहे थे उनका एक पैर कबीर के उपर पड़ गया रामानंद जी बोल उठे राम-राम कह कबीर ने इसे ही गुरुमंत्र मान लिया और अपने को गुरु रामानंद जी का शिष्य कहने लगे।

कबीर पर गुरु का रंग इस तरह चढ़ा कि उन्होंने गुरु के सम्मान में कहा है-

सब धरती कागद करू, लेखनी सब वनराज

सत समुंद्र की मसि करू, गुरु गुण लिखा न जाए।।

कबीर सांसारिक जिम्मेदारियों से कभी दूर नहीं हुए। उनकी पत्नी का नाम लोई था, पुत्र का कमाल और पुत्री का नाम कमाली ये पारिवारिक रिश्तों को भी भलीभांति निभाए जीवन यापन हेतु उम्र भर पिता के व्यवसाय में लगे रहे। कबीर का पूरा जीवन काशी में ही गुजरा, लेकिन वह मरने के समय मगहर चले गए थे। कहा जाता है कि कबीर के शत्रुओं ने उनको जाने के लिए मजबूर किया था। वे चाहते थे कि कबीर की मुक्ति न हो पाए, परन्तु कबीर तो काशी मरने से नहीं, राम की भक्ति से मुक्ति पाना चाहते थे।

"जौ काशी तन तजै कबीर तो रामै कौन निहोटा"

उन्होंने स्वयं ग्रंथ नहीं लिखे मुंह से बोले और उनको शिष्यों ने उसे लिख लिया। इनके समस्त विचारों में रामनाम की महिमा प्रतिध्वनि होती है कबीर के नाम से मिले ग्रंथों की संख्या भिन्न-

भिन्न लेखों के अनुसार भिन्न-भिन्न है। कबीर की वाणी का संग्रह बीजक के नाम से प्रसिद्ध है। इसके तीन भाग हैं- रमैनी सबद और साखी।

कबीरदास हिन्दी साहित्य में ज्ञानमार्गी शाखा के प्रवर्तक माने जाते हैं। कबीर पर वैष्णव धर्म अद्वैतवाद हठयोग एवं एकेश्वरवाद का प्रभाव पड़ा है। उनकी साधना के दो रूप थे कर्मयोग और हठयोग कर्म योगी के समान वे संसार के माया-मोह से निर्लिप्त रहते थे। उनकी कथनी और करनी में साम्य था परन्तु उन्होंने संसार के संघर्ष से पलायन का उपदेश कभी नहीं दिया। वे उससे टक्कर लेने के पक्षपाती थे। उन्होंने संसार के माया से स्वयं को मुक्त कर लिया था। कबीर की काव्याभिव्यक्ति सरल एवं सुबोध जनमाषा में मिलता है, परन्तु उसमें स्पष्टता एवं प्रभावोत्पादकता कहीं अधिक है। "वह सरलता, सत्यता, व्यावहारिकता एवं स्पष्टवादिता के लिए प्रसिद्ध है। उसमें धार्मिक पाखण्डों, सामाजिक कुरीतियों, अनाचारों पारस्परिक विरोधों आदि को दूर करने की अपूर्व शक्ति है, उसमें समाज के अन्तर्गत कांति उत्पन्न करने की

अदभूत क्षमता है और उसमें चित-वृत्तियों को परिमार्जित करके हृदय को उदार बनाने की अनुपम सामर्थ्य है।

यह सर्वविदित है कि कबीर ने कोई विद्यालयी शिक्षा ग्रहण नहीं की थी, जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है- "कागद छूयो नहीं, कलम गही नहीं हाथ उन्हें छन्द शास्त्र का भी ज्ञान नहीं था परन्तु उन्होंने व्यापक सत्संग किया था. अतएव कवि बनने के लिए उन्होंने कविता की रचना नहीं की। उन्होंने केवल अपने उन मनोद्गारों को निकालकर ज्यों का त्यों रख दिया है जिन्हें वे अपने हृदय में न रोक सके थे। कबीर देश में यत्र तत्र भ्रमण करते रहते थे अतः यह स्वाभाविक ही था कि उनकी भाषा में विविधता होगी। कबीर की भाषा में पंजाबी, राजस्थानी, अवधी, ब्रज आदि का प्रयोग हुआ है अतः उनकी भाषा को सघुक्कड़ी एवं खिचड़ी की संज्ञा दी गयी है।

कबीर मूलतः काशी के रहने वाले थे और काशी में मुख्यतया भोजपुरी बोली जाती थी। उधर कबीर ने स्वयं भी हम पूरब के

पुरबिया' अथवा 'हमारी बोली पूरब की भाषा के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत प्रचलित है. जो इस प्रकार है-

1. इसकी (साखी की भाषा समुक्कड़ी अर्थात् राजस्थानी पंजाबी मिली खड़ी बोली है, पर रमैनी और सबद में काव्य की ब्रज भाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली का भी व्यवहार है।"

2. कबीर की बोली 'पूरबी ही अधिक होनी चाहिए, क्योंकि उन्होंने कहा भी है उनका सारा जन्म "शिवपुरी (काशी) में व्यतीत हुआ। -प्रधान रूप से हमें उसमें पूर्वी हिन्दी (अवधी) व्याकरण के रूप में मिलते हैं। कहीं-कहीं खड़ी बोली पंजाबी और ब्रज का रूप भी दिखायी देता है।" कबीर की रचना में हमें मुख्यतः ब्रजभाषा मिलती है लेकिन इसमें कौसली या पूर्वी हिन्दी का कुछ-कुछ मेल पाया जाता है और खड़ी बोली का रूप भी यथेष्ट परिमाण में मिलता है।

इस प्रकार देखा जाए तो कबीर को बानियों में भोजपुरी के खम्भवा, पऊवा, पहरवा, खटोलवा. आदि संज्ञापद तथा पावल

राखल, लूटल, सूचल, आदि क्रिया पद मिलते हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा का मत है कि "कबीर के पद मूल रूप में सम्भवतः भोजपुरी में ही थे। बाद में उन्हें पछाड़ी भाषा में परिवर्तित किया गया है। इसके अतिरिक्त जब हम कबीर की बानियों के उपलब्ध रूपों पर विचार करते हैं, तब पता चलता है, कि अभी तक कबीर की बानियों के दो ही प्रामाणिक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। एक डॉ. श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित 'कबीर ग्रन्थावली' है जो सं. 1561 तथा सं. 1881 की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर तैयार की गयी है तथा दूसरी प्रामाणिक पुस्तक 'सन्त कबीर' है जिसका सम्पादन डॉ. रामकुमार वर्मा ने किया है। इन दोनों ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कबीर की भाषा में अनेक बोलियों का सम्मिश्रण है, क्योंकि उसमें अंषड़ियाँ, जिभाडियाँ, कसाइयाँ आदि पंजाबी बोली के शब्द विद्यमान हैं तो कहीं बिसूरणी रोवण, संजनों, आपण रैणा आदि राजस्थानी बोली के शब्द भी अत्यधिक हैं। ऐसे ही कहीं उसमें 'लेट्यौ.. घट्यौ, पकर्यौ, चल्यो' आदि ब्रज बोली के रूप मिलते हैं, तो कहीं 'जाऊँगा, आऊँगा, लागा, भागा' आदि शुद्ध खड़ी बोली के शब्दों

का भी प्रयोग मिलता है। ऐसे ही कहीं गोर तोर दुख पाव आदि अवधी के शब्दों का रूप विद्यमान है। इतना ही नहीं पीर, मुरीद, काजी, दरवेश, मुल्ला, कुरान, खोदाई, पाक, नापाक आदि अरबी-फारसी के शब्द भी कबीर ने अत्यधिक मात्रा में अपनाये हैं। उनकी भाषा में लिंग वचन कारक आदि किसी प्रकार का बंधन नहीं है और उसके शब्दों को छील छीलकर या किसी एक भाषा के सांचे में डालकर ही सुन्दर एवं सुडौल बनाया गया है।

कबीर की भाषा में सम्मिश्रण के कारण का पता लगाने पर ज्ञात होता है कि कबीर ने पर्याप्त मात्रा में देशाटन किया था जिसके कारण उनकी भाषा में विभिन्न भाषाओं का समावेश मिलता है। वे जहाँ पहुँचते थे वहाँ की भाषा के द्वारा लोगों तक अपनी बातों को पहुंचाना चाहते थे। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि जिस समय कबीर ने संसकिरित के कूप जल भाषा बहता नीर की घोषणा करके लोकभाषा को ही अपने विचार प्रकट करने का माध्यम बनाया था. उस समय अपभ्रंश भाषाएँ साहित्यिक क्षेत्र से विदा हो रही थी और लोकभाषाएँ पनपकर उनका स्थान ग्रहण कर रही थी। कबीर की भाषा के सम्मिश्रण का तीसरा कारण यह

भी हो सकता है कि कबीर के शिष्य-प्रशिष्य भिन्न-भिन्न वर्ग एवं भिन्न-भिन्न प्रांतों के थे। वे जब कभी कबीर की बानी को अपने विचारों की पुष्टि के लिए उद्धृत करते होंगे, तब उसमें अपनी विशेषताओं को जोड़ देते होंगे।

कबीर का लक्ष्य अपने मत को अधिक से अधिक लोगों के पास पहुँचा देने का था, साहित्य-सर्जना करना नहीं था जिससे कि वे किसी विशेष साहित्यिक भाषा का प्रयोग करते थे प्रचलित कुरीतियों और 1 रूढ़ियों के विरोधी थे, उनसे वे समाज को मुक्त करना चाहते थे ये दम्भ, पाखण्ड और छद्म के स्थान पर सहज सत्य की प्रतिष्ठा देखना चाहते थे। वे यह भी जानते थे कि सत्य की एकता का साक्षात्कार इन चर्मलोचनों से नहीं हो सकता, केवल हृदय के लोचन ही उसे देख सकते हैं। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कबीर किसी क्षेत्रीय संकीर्णता में उलझ कर अपने को खो देना नहीं चाहते थे। इससे उन्होंने उस भाषा को अपनाया जो विस्तृत नू-खण्ड की भाषा थी, जिसको हिन्दू और मुसलमान दोनों सहर्ष समझ और स्वीकार कर सकते थे और जिसका स्वागत अनेक प्रदेशों में हो सकता था। कबीर ने अपनी बातों को

जनता तक पहुँचाने में सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक भाषा का भी प्रयोग किया है। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर की सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक वर्णन प्राणली को देखकर कबीर की भाषा की गणना संध्या भाषा की परम्परा की है। परन्तु डॉ. सरनाम सिंह का मत है कि कबीर की भाषा को सन्ध्या भाषा से सम्बन्धित कदापि नहीं किया जा सकता, क्योंकि सन्ध्या-भाषा के प्रवर्तको (सिद्धों) का जो लक्ष्य था, उससे कबीर का लक्ष्य सर्वथा मिल था। जबकि पहले लोग भोली-भाली जनता को भ्रांति में डालना चाहते थे, कबीर उसे शान्ति के पथ पर ले जाना चाहते थे सिद्धों की भाषा गुमराह करने वाली थी और कबीर की भाषा राह दिखाने वाली थी।"

अतएव कबीर की भाषा के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह सांकेतिक एवं प्रतीकात्मक होते हुए भी ओजपूर्ण है, रहस्यात्मक होते हुए भी सशक्त है। कबीर की भाषा में इन सारी विशेषताओं के साथ उनकी भाषा सरल है, उसमें प्रवाह, जो पाठकों और श्रोताओं को अपने साथ बहा ले जाता है। उसमें अदभुत प्रभाव और प्रेषणीयता है। कबीर की भाषा तो उस स्रोतस्विनी के समान

प्रवाहित हुई है. जो ऊबड़-खाबड़ पर्वतीय मार्गों में भी अपनी राह बनाती हुई कल-कल निनाद के साथ आगे बढ़ती चली जाती है।

सन्दर्भ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास- हृदयेश मिश्र, शिवलोचन पाण्डे
पृष्ठ- 60
2. हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना,
पृ. 85
3. हिन्दी भाषा का इतिहास- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 56 4. हिन्दी
साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 98
5. संत कबीर- डॉ. रामकुमार वर्मा, प्रस्तावना
6. भारत की भाषाएँ डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी, पृ.60 7. हिन्दी
साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 262-263

8. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास- डॉ. रामस्वरूप
चतुर्वेदी पू. 41

9. कबीर एक विवेचन पू. 269